



सितार के विविध घरानों में प्रचलित गतों का अध्ययन एवं उनके द्वारा रस उत्पत्ति

Paras Chopra

Research Scholar, Dr. K.N. Modi University Newai, Rajasthan

Dr. Lalita Singh Chauhan

Assistant Professor (Music), Dr. K. N. Modi University, Newai, Rajasthan

सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी शुरुआत से लेकर आज तक परिवर्तनों और संक्रमण के विभिन्न चरणों से गुजरा है, इसलिए सितार संगीत भी है। इस प्रक्रिया में इसने पुरानी परंपरा के साथ पूर्ण संतुलन बनाए रखते हुए कई विशेषताओं को अपनाया और अस्वीकार किया है। भौतिक संरचनाओं, बजाने की शैलियों (बाज) से लेकर भारतीय संगीत की दुनिया में इसके स्थान तक, वाद्य यंत्र संगीत के इतिहास में बहुत से बदलावों से गुजरा है। 20वीं और 21वीं सदी में वैश्वीकरण की दुनिया में आर्थिक लचीलेपन और प्रौद्योगिकी की उन्नति के साथ, समाज पश्चिमी मूल्यों, विचारों, प्रौद्योगिकियों और संस्थानों को शामिल करने और कला और संगीत के वस्तुकरण की ओर अग्रसर है। मेरी थीसिस 20वीं और 21वीं सदी में सितार बाज का शैलीगत विकास का उद्देश्य सितार संगीत के विभिन्न पहलुओं का समग्र शोध करना था। शोध में संक्रमण की इस प्रक्रिया के पीछे काम करने वाले संगीत और गैर-संगीत कारकों को उजागर करने का भी प्रयास किया जाएगा। शोध में संगीत के महत्वपूर्ण मूल्यांकन के लिए डेटा संग्रह के गुणात्मक तरीकों का इस्तेमाल किया गया है, जिसमें भागीदारी अवलोकन की मदद से खुद को क्षेत्र की स्थिति से परिचित कराया गया है। शोध डेटा संग्रह मुख्य रूप से सितार संगीत से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न कलाकारों के व्यक्तिगत साक्षात्कारों पर केंद्रित था।

मुख्यशब्द रू सितार संगीत, सांस्कृतिक परंपरा, गुरु-शिष्य परंपरा, आत्मानुभूति, संगीत और समाज, वैश्विक प्रभाव।

परिचय

भारतीय शास्त्रीय संगीत में सितार एक प्रमुख और प्रतिष्ठित वाद्य यंत्र के रूप में अपनी विशेष पहचान रखता है। यह केवल एक वाद्य यंत्र नहीं, भारतीय संगीत की आत्मा और भावाभिव्यक्ति का संवाहक है। सितार का विकास 18वीं शताब्दी से लेकर आज तक निरंतर होता रहा है और इसकी परंपरा ने अनेक घरानों को जन्म दिया है। प्रत्येक घराना अपने विशिष्ट अंदाज, शैली और प्रस्तुति पद्धति के

लिए जाना जाता है। विशेष रूप से सितार वादन में गतो का महत्व अत्यंत केंद्रीय है। गतो के माध्यम से राग का विस्तृत रूप सामने आता है, श्रोता के मन में विभिन्न प्रकार के रसों की उत्पत्ति भी होती है। वस्तुतः गतो को सितार वादन का हृदय कहा जा सकता है, क्योंकि इन्हीं के जरिए राग की सौंदर्यात्मकता और भावनात्मक गहराई उभरकर आती है।

सितार के विभिन्न घरानेकृजैसे इमदादखानी घराना, सेनिया घराना, मैहर घराना आदिकृअपनी-अपनी विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध हैं। इन घरानों में विकसित गतो की शैली अलग-अलग होती है, जिसमें स्वरप्रयोग, लयकारी, तानों की गति, और अलंकरण की विधियां भिन्न रूप से दिखाई देती हैं। उदाहरणस्वरूप, इमदादखानी घराना अपनी मींड़ों और विलंबित लय में प्रस्तुत गतो के लिए विख्यात है, जबकि मैहर घराना ध्रुपद-आधारित गम्भीरता और बारीकियों पर जोर देता है। प्रत्येक घराने की गतो की प्रस्तुति रसोत्पत्ति में भी विविधता लाती है। कुछ गतो शृंगार रस की कोमलता और माधुर्य उत्पन्न करती हैं, तो कुछ वीर रस या करुण रस की गहनता को व्यक्त करती हैं।

रसोत्पत्ति भारतीय शास्त्रीय संगीत की मूल आत्मा है, और सितार के विविध घरानों द्वारा प्रस्तुत गतो में यह विशेष रूप से प्रकट होती है। रस का अनुभव श्रोता को केवल संगीतात्मक आनंद ही नहीं देता, उसे मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी प्रभावित करता है। सितार वादन की यही विशेषता है कि वह केवल स्वरों का संकलन नहीं, भावों का सजीव संचार है। इसलिए, सितार के विविध घरानों में प्रचलित गतो का अध्ययन संगीतशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, भारतीय संगीत के सांस्कृतिक और सौंदर्यशास्त्रीय आयामों को समझने में भी सहायक है।

उद्देश्य

- सितार के विभिन्न घरानों का परिचय एवं ऐतिहासिक विकास
- गतो की संरचना और शैली का तुलनात्मक अध्ययन
- गतो के माध्यम से रसोत्पत्ति का विश्लेषण

घराने की उत्पत्ति

भारतीय संगीत ने एक लंबी यात्रा तय की है। इसने अच्छे और बुरे समय देखे हैं। एक जगह इसे कुछ लोगों ने सराहा और दूसरी जगह दूसरों ने नापसंद किया। इसने जो भी शैली अपनाई हो, उसे सिखाने और सीखने के लिए कुछ गुरु और शिष्य जरूर रहे होंगे

श्रघरानाश का मतलब है गुरु शिष्य परंपरा। यह शब्द लंबे समय से इस्तेमाल में है।

घराने के लिए अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल किया जाता था

1. शाखा

2. स्कूल
3. गीति
4. वाणी
5. मत

शिव—मत, ब्रह्म मत नृत्य की महान पारंपरिक संस्थाएँ थीं

घराने का अस्तित्व

हर घराने की अपनी परंपराएं और तकनीकें होती हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती हैं और हर तकनीक को वादन शैली कहा जाता है। हर घराने में कुछ खास राग और बंदिशें होती हैं जो उसे अपने शबाजश या शचालश के लिए मशहूर बनाती हैं। सितार घराने में हर कलाकार की अपनी शैलीश या शबाजश या वादन शैली या शविधिश होती है। इन शैलियों को शघरानाश कहा जाता था। विशिष्ट गायन, वादन या नृत्य शैलियों के अपने-अपने शघरानाश होते थे जिनका नाम गायक, वादक और नर्तक के नाम पर रखा जाता था। ये घराने हमारी कला को जीवित रखे हुए हैं और हम भाग्यशाली हैं कि हमारे पास पारंपरिक संगीत है। सितार घरानों में गायन शास्त्रीय संगीत का बहुत प्रभाव था। सितार वादन शैली की शुरुआत गायन संगीत के आधार पर हुई थी। 14वीं शताब्दी की शुरुआत से ही शास्त्रीय गायन ने वाद्य संगीत में नई शैलियों के आविष्कार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह इतने हाथों से गुजरा है कि नई तकनीकें और बाजा विधियां अस्तित्व में आईं। इस प्रकार शघरानाश सामाजिक विशेषता (सदस्यता) और सांस्कृतिक विशेषता (संगीत शैली) का मिश्रण है। घराना एक पारिवारिक परंपरा है, वंशानुगत संगीतकारों, उनके शिष्यों और उनके द्वारा प्रस्तुत विशेष संगीत शैली की एक वंशावली। ऐतिहासिक रूप से, संगीत परिवार संरक्षण के परिणामस्वरूप शघरानाश बन गए। वे भारतीय संगीत की सांस्कृतिक विरासत के वास्तविक संरक्षक हैं। इस भूमिका में, उन्होंने हमारे पारंपरिक संगीत को, इसकी मूल सुंदरता और महिमा में संरक्षित किया है, इसे कलात्मकता से समृद्ध भी किया है। एक शघरानाश में आमतौर पर वंशानुगत संगीतकारों की एक पंक्ति शामिल होती है जिन्हें शखानदानश कहा जाता है। उनकी संगीत शैली को शखानदानी चीज के रूप में भी जाना जाता है। शखानदानश एक आंतरिक चक्र बनाता है, इसमें विशेष शगतश, तोरा और तकनीकें शामिल हो सकती हैं। खानदान परंपरा में स्वामी केवल अपने प्रिय शिष्य या अपने परिवार के सदस्यों को ही शिक्षा देता है। लय के साथ बोल को दर्शाने वाला विशेष सौंदर्यबोध, सितार बाज की कई प्रणालियों का आधार है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों ने ऐसे नियम बनाए जिन्हें बाद में अन्य संगीतकारों ने अपनाया। शास्त्रीय काल (600–500 ई.पू.) में संगीत की चार प्रमुख शैलियों का उल्लेख मिलता है। इन्हें शसम्प्रदायश कहा जाता था। यहीं से वर्तमान शताब्दी के शघरानोंश की उत्पत्ति का पता चलता है। विकास का अगला चरण षीतियोंष के उद्भव के साथ आया, अर्थात् विभिन्न वरमाओं के लिए गाए जाने वाले गीत। फिर ये वाणी या गीतियाँ धीरे-धीरे धरुपद, ख्याल और वाद्य संगीत में समाहित हो गईं।

इन वाणीयों का उपयोग तब बीनकारों द्वारा किया जाता था, जिनका उपयोग आज भी किया जाता है। जिस समय ख्याल का बोलबाला बढ़ रहा था, सितार वादन में नए रुझान विकसित हुए। ख्याल ने सितार वादन पर अपना प्रभाव डाला। तानसेन के प्रत्यक्ष वंशज मसीत खान ने सितार को ध्रुपद परंपरा में अपनाया। बाद में रहीमसेन और अमृतसेन ने इस तकनीक को और विकसित किया। लेकिन यह इमदाद खान ही थे जिन्होंने कुछ सहानुभूतिपूर्ण तार जोड़े और इस वाद्य को स्वर में समृद्ध और ध्वनि में पूर्ण बनाया। अलंकरणों का उपयोग उदार हो गया और इनायत खान ने और नवाचार किए और सितार बजाने में एक नई दिशा दी। इस प्रकार प्राचीन संगीत परंपरा में कई बदलाव हुए हैं, वाणी, गीति की परंपरा और साथ ही गुरु शिष्य परंपरा भारत में संगीत घरानों का आधार बनती है।

सितार के विभिन्न घरानों की बदलती वादन शैलियाँ

उत्तर भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही भारतीय संगीत का विकास तेजी से हुआ, हालांकि अतीत से विरासत में मिली परंपरा से पूरी तरह से विच्छेद नहीं हुआ। 14वीं शताब्दी में संगीत की स्थिति लोकप्रियता प्राप्त कर रही थी। कई रागों और वाद्ययंत्रों का आविष्कार किया गया, सितार उन वाद्ययंत्रों में से एक है।

18वीं शताब्दी मुहम्मद शाह रंगीले के शासनकाल (1719–1748) के दौरान संगीत को व्यापक संरक्षण मिला। सितार वादन की विभिन्न शैलियों के बारे में कई संस्करण और राय हैं, लेकिन यह आम तौर पर स्वीकार किया जाएगा कि सितार पर शगतश या शब्दिशश का क्रिस्टलीकरण 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण हो सकता है कि इस स्तर पर, तानसेन के अनुयायी दो मुख्य धाराओं में विभाजित थे, एक बीनकार और दूसरी रबाबिया। बीनकार स्वर प्रस्तुति को महत्व देते थे, जबकि रबाबिया लय पर जोर देते थे। सितार ने स्वर और लय दोनों का प्रयोग किया, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह गायन की ध्रुपद शैली पर आधारित था। यह वह युग था जब विलम्बित तीन ताल में मसीत-खानीगत सितार पर बजाए जाते थे। गतों के आगे के विकास का पता लगाने पर, हमें रहीमसेन का नाम मिलता है, जिन्होंने 18वीं शताब्दी के दौरान सितार को एक बहुमुखी और अत्यधिक प्रभावी वाद्य के रूप में विकसित किया। ध्रुपद अंग का प्रयोग किया गया। तीन ताल की गतों के अलावा, थपताल में भी कई गतें रची गईं। छोटे-छोटे मींड भी बजाए गए। मसीत-खानी बाज मुख्य रूप से दिल्ली, जयपुर, अलवर आदि में विकसित हो रहा था, जबकि रजाखानी बाज के रूप में जानी जाने वाली एक अन्य शैली लोकप्रियता प्राप्त कर रही थी और लखनऊ, काशी और जौनपुर में विकसित हो रही थी।

शास्त्रीय संगीत में सितार

यद्यपि 19वीं शताब्दी ने हमें अनेक कलाकार दिए हैं, जिन्होंने अपना पूरा जीवन शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया, किन्तु इतने प्रयासों के बाद भी शास्त्रीय संगीत अपेक्षित ऊंचाई तक नहीं पहुंच सका। स्वतंत्रता के पश्चात भी भारतीय शास्त्रीय संगीत भारतीय समाज में अपनी वह स्थिति पुनः प्राप्त नहीं कर सका, जो अतीत में थी। फिर भी यह सुगम या लोक संगीत जितना प्रचलित और मनमोहक नहीं है। इस स्थिति के लिए नई पीढ़ी के बदलते दृष्टिकोण और

वातावरण तथा शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में भक्ति शिक्षकों की कमी जिम्मेदार है। यदि हम तानसेन से सदारंग तक अर्थात् लगभग दो सौ वर्षों के काल पर विचार करें तो हम निष्कर्ष निकालते हैं कि ध्रुपद शैली प्रचलित थी, अतः सितार ने भी उसी तकनीक को अपनाया था। अलाप प्रमुख था। इसके अतिरिक्त सदारंग से फैयाज खां तक अर्थात् लगभग 200 वर्षों के काल पर विचार करें तो यद्यपि ध्रुपद सितार में मुख्य वादन शैली थी, किन्तु दूसरी ओर टप्पा और ठुमरी ने भी एक साथ सितार को लोकप्रिय बनाया। शास्त्रीय संगीत को सीखना थोड़ा आसान हो गया था। सुगम संगीत ने लोकप्रियता हासिल करना शुरू कर दिया। शास्त्रीय संगीत के पतन का पहला और सबसे बड़ा कारण अभ्यास या श्साधनाश की कमी और शास्त्रीय संगीत के प्रति गुरु की निष्ठा थी। कलाकार सिर्फ पैसे और शोहरत के लिए प्रदर्शन करते थे।

सितार का लोकप्रियकरण

शास्त्रीय संगीत के प्रति लोगों की रुचि में अचानक परिवर्तन आया, जिसके परिणामस्वरूप शास्त्रीय संगीत का स्थान सुगम संगीत ने ले लिया। स्वतंत्रता संग्राम, देश में अशांति, राजनीतिक असंतुलन के कारण सभी महान कलाकारों को पीछे हटना पड़ा। भातखंडे स्वर प्रणाली के अस्तित्व में आने पर फिल्म संगीत ने अधिक लोगों को आकर्षित किया, इसे सिखाना आसान था और इस पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें विभिन्न उस्तादों द्वारा गाए या बजाए जाने वाले सभी राग या ख्याल शामिल थे। शास्त्रीय संगीत केवल गायकों तक ही सीमित था। वादकों की कमी थी, हालांकि कुछ सरोद और वीणा वादक थे। सितार वादन का प्रदर्शन होने लगा। गुरुओं ने कुछ चुनिंदा शिष्यों को सितार वादन की शिक्षा देनी शुरू कर दी। ऑल इंडिया रेडियो ने सितार वादकों को उनके प्रदर्शन का अवसर दिया। इसने उन्हें प्रदर्शन के लिए अच्छी रकम देना शुरू कर दिया।

सरकार ने कलाकारों को आर्थिक मदद देना शुरू कर दिया, ताकि वे अपनी कला और प्रतिभा को आसानी से और अपनी पसंद के अनुसार और आम जनता के लिए निखार सकें। शास्त्रीय वाद्य संगीत में श्रोताओं की रुचि बढ़ने लगी। संगीत नाटक अकादमी ने शास्त्रीय वाद्य संगीत को बढ़ावा देने के लिए बहुत प्रयास किए। इसने वाद्य संगीत के साथ-साथ गायन संगीत में भी बड़ी संख्या में कलाकार तैयार किए हैं। ग्वालियर घराने और सेनिया घराने के कलाकारों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में इस अनूठी कला यानी सितार को बढ़ावा देने के लिए बहुत काम किया है। आकाशवाणी भारतीय शास्त्रीय वाद्य संगीत के नियमित कार्यक्रम प्रसारित करती है। स्कूल और कॉलेज शास्त्रीय वाद्य संगीत के लिए प्रतियोगिताएं आयोजित करते हैं जो छात्रों में संगीत के प्रति प्रेम को बढ़ावा देती हैं।

सितार की उत्पत्ति (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

सितार आज भारत में सबसे लोकप्रिय वाद्य है। सितार की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न सिद्धांत और मत हैं। हमें भारतीय इतिहास में 13वीं शताब्दी और फिर 18वीं शताब्दी में इस वाद्य के बारे में कुछ संदर्भ मिलते हैं। जैसा कि पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है, वैदिक, प्राचीन काल के तार वाले वाद्य, इसलिए हमें उस काल, वीणा के बारे में पता चलता है जो उस समय प्रचलित थे। यह एक कठिन तथ्य है कि त्रि-तंत्री वीणा आधार है, लेकिन तारों की व्यवस्था के लिए नाम, ट्यूनिंग और मध्ययुगीन

वीणा के प्लकिंग तकनीक को केवल एक लौकी की जगह एक लकड़ी के लुटेरे के कटोरे में जोड़ा गया है ताकि दक्षिण भारतीय श्वीणाश बनाई जा सके। इसके विपरीत सितार में तारों और ट्यूनिंग का केंद्र होता है। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि सितार 10वीं शताब्दी के दौरान भारत में प्रचलित श्वीणाश का वंशज है, लेकिन शसितारश का आविष्कारक कौन है

सितार की उत्पत्ति निम्नलिखित संस्करणों से जुड़ी है

1. सितार एक ईरानीधफारसी वाद्य है।

अमीर खुसरो ने शसितारश (सेहतार) का आविष्कार किया जो शसितारश बन गया।

प्राचीन त्रि-तंत्री वीणा को अमीर खुसरो ने एक नया नाम सेह-तार दिया। उन्होंने त्रि-तंत्री के लिए अपनी भाषा (फारसी) का प्रयोग ष्सेह-तार के रूप में किया। प्रसिद्ध भारतीय संगीतकार नौशाद साहब ने टी.वी. (19,12,92) में एक साक्षात्कार में कहा कि अमीर खुसरो ईरान से श्सेह-तारश लाए और इस वाद्य पर तीन और तार लगाए। मुसलमानों ने एक और तार लगाया जिसे चिकारी कहा जाता था।

आइने-अकबरी में अबुल फजल के अनुसार – अमीर खुसरो ने शता-तारश का आविष्कार किया। पंडित रविशंकर जी ने अपनी पुस्तक श्माई म्यूजिक माई लाइफ में अमीर खुसरो द्वारा सितार के आविष्कार का प्रमाण दिया है। अमीर खुसरो ने तार वाले वाद्य यंत्र शसितारश का आविष्कार किया था। श्सेहश का मतलब तीन और तार का मतलब तार होता है, इसलिए इसका नाम शसितारश पड़ा। रेडियो बांग्लादेश के निदेशक और उस्ताद अलाउद्दीन खान के भतीजे मोबारद हुसैन खान का मानना है कि सितार का आविष्कार अमीर खुसरो ने किया था। सितार किन्नरी या त्रि-तंत्री या सप्त-तंत्री वीणा का एक रूपांतर है। महाराष्ट्र में शसत्तरश सात तारों वाला एक बहुत लोकप्रिय वाद्य यंत्र था। फिर इस वाद्य यंत्र का नाम शसत्तरश पड़ा और कुछ समय बाद लोग इसे शसितारश के नाम से पुकारने लगे। शसितार निबद्ध तंबूरे का बदला हुआ रूप है। इसमें पाँच से छह तार होते थे। प्राचीन त्रि-तंत्री वीणा को अमीर-खुसरो ने नया नाम सह-तार दिया था। उन्होंने त्रि-तंत्री वीणा के लिए अपनी भाषा में श्सेह-तारश का इस्तेमाल किया। एक अन्य मत यह है कि शजंतरश में पाँच तार और सोलह परेट्स थे, इसलिए सितार की उत्पत्ति इसी वाद्य से हुई है।

सितार के बदलते रूप

13वीं से 16वीं शताब्दी रू परिवर्तन संसार का स्वाभाविक स्वभाव है। परिवर्तन और विकास प्रत्येक घटना में अपरिहार्य है। यह मानव समाज का अभिन्न अंग है। इसलिए हमें समय-समय पर इसके नए और नवीन रूप और प्रकार देखने को मिलते हैं। सितार ने भी एक लंबा सफर तय किया है। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि शसितारश में तीन तार होते थे। लेकिन जब अमीर खुसरो ने इस वाद्य में तीन और तार जोड़े और मुसलमानों ने इसमें एक चिकारी तार जोड़ा, तो यह सात तारों वाला वाद्य बन गया। सोलहवीं शताब्दी में इमरत्सेन और निहालसेन ने सितार के

दामद के पीछे एक अतिरिक्त लौकी लगाई जिससे तार का आस्सा लंबा हो गया, जिससे सितार के एकल वादन में मदद मिली।

शुरुआत में इसमें ग्यारह सहानुभूति तार (तरब) और सात तार थे जहाँ

५. बाज तार यह मुख्य तार है जिस पर बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली से दबाने पर स्वर उत्पन्न होते हैं। 13वीं, 14वीं शताब्दी में इसे मध्यम तार या नायकी तार कहा जाता था। आज यह शब्द लगभग लुप्त हो चुका है और पहले तार को बाज का तार कहा जाता है। इस तार को मण्डूर सप्तक के मध्यम के रूप में गाया जाता है।

2,3. जोर का तार बाज के तार के अंदर दो तार होते हैं, जो मन्द्र सप्तक के षडज में बंधे होते हैं।

4. चौथा तार मन्द्र सप्तक के षडज में बंधा होता है।

5. पाँचवाँ तार मन्द्र सप्तक के पंचम में बंधा होता है।

6. अगला (छठा) तार मध्य सप्तक के षडज में बंधा होता है।

7. फिर सातवाँ तार आता है। इसे चिकारी या पपीता तार कहते हैं। इसे तार-सप्तक के षडज में बांधा जाता है। आलाप या झाला में यह तार सौंदर्य और आकर्षण लाता है। जब भी वादक थोड़ा विराम लेना चाहता है, तो वह इस तार को लय में बजाकर राग की निरंतरता बनाता है। यह सितार वादन में सौंदर्य और मिठास को समृद्ध करने में मदद करता है।

सितार का संरचनात्मक स्वरूप

जैसा कि पिछले भाग में बताया गया है, कि सितार अतीत में विभिन्न आकार और आकारों में मौजूद रहा है। फ्रेट्स और तारों के विभिन्न सदस्य एक साथ उपयोग में थे। हालाँकि यह स्थिति अभी भी बनी हुई है, संगीत कार्यक्रमों और प्रदर्शनों और शिक्षार्थियों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला सितार काफी हद तक मानकीकृत हो गया है। एक कलाकार अपने सितार को अपने विशेष वादन शैली के अनुरूप कुछ हद तक अनुकूलित कर सकता है, या वह अपनी पसंद के अनुसार लकड़ी को समायोजित कर सकता है, लेकिन ये आमतौर पर पुल की वक्रता को बदलने जैसे मामूली समायोजन होते हैं। इस वाद्य को विशेष रूप से चल-थाट तरफदार सितार कहा जाता है क्योंकि इसमें फ्रेट्स के नीचे सहानुभूतिपूर्वक प्रतिध्वनित तारों (तराफ) का एक सेट शामिल होता है और क्योंकि कुछ स्केल प्रकारों के लिए फ्रेट्स को फिर से लगाने की आवश्यकता होती है।

इसके प्रत्येक भाग के निर्माण और कार्यात्मक उपयोग का विवरण इस प्रकार है

(क) लौकी इसका पेट जैक या किसी अन्य गुंजयमान लकड़ी यानी शतुंबाश से बना होता है। लौकी को अंदर से खाली रखा जाता है ताकि तारों को दबाने पर ध्वनि उचित प्रभाव दे। लौकी वाद्य यंत्र का मुख्य गुंजयमान कक्ष है।

(ख) तबली यह ध्वनि बोर्ड है। यह 14^८ चौड़ा होता है। तबली के पतलेपन का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह वह हिस्सा है जहाँ पुल या जवारी को रखा जाना है। इसलिए वक्र एक कलाकृति है। इसे अधिक लचीला बनाने के लिए इसका आकार थोड़ा उत्तल होता है। इसका पतलापन अधिक प्रतिध्वनि प्रदान करता है लेकिन यह तारों के दबाव को झेलने के लिए पर्याप्त मोटा होना चाहिए।

(ग) गुलु जब लौकी और तबली को जोड़ दिया जाता है तो एक जगह आती है जहाँ इन दोनों को आपस में जोड़ा जाता है। गुलु का मुख्य संरचनात्मक कार्य मजबूत आधार प्रदान करना है जिसके माध्यम से डांड को लौकी के गुंजयमान यंत्र से अप्रत्यक्ष रूप से जोड़ा जा सकता है।

(घ) लंगोट या लॉन्गोरस या कीलयह हिरण के सींग या कील का एक छोटा त्रिकोणीय टुकड़ा होता है जो एक लंगर के रूप में काम करता है जिससे सभी तार जुड़े होते हैं। इसे तुम्बा के निचले हिस्से पर लगाया जाता है, जहाँ से सभी तार अपने गंतव्य तक जाते हैं।

(ई) डांड यह 34 इंच लंबी पाइप होती है जो तीन इंच चौड़ी होती है। यह वाद्य की गर्दन होती है। डांड बनाने के लिए बर्मी सागौन की लकड़ी सबसे अच्छी होती है, लेकिन कुछ सितार निर्माता शीशम या तनु की लकड़ी का भी इस्तेमाल करते हैं। डांड का पिछला हिस्सा गोल आकार का होता है जिस पर समतल लकड़ी का टुकड़ा फिट किया जाता है। फिर फिंगर बोर्ड के ऊपरी हिस्से पर तार के छेद किए जाते हैं ताकि उस पर लगे तरब और फ्रेट को एडजस्ट किया जा सके।

(एफ) जवारी या घुरच यह सितार का पुल है – हाथी दांत की एक सपाट प्लेट। सात बजाने वाले तार इसके ऊपर से गुजरते हैं। भाषा और घुरच की दूरी 4 इंच होती है। घुरच 3 इंच लंबा और 1 इंच चौड़ा होता है। घुरच के ऊपरी हिस्से को जवारी के नाम से जाना जाता है। ऊपरी हिस्सा मृग के सींग से और निचला हिस्सा तुन की लकड़ी से बनाया जाता है। एक समान, समृद्ध ध्वनि उत्पन्न करने के लिए, जवारी को एक सटीक वक्रता के लिए फाइल किया जाना चाहिए। फाइलिंग तकनीक एक अत्यधिक विशिष्ट शिल्प है और भारत में केवल कुछ ही सितार निर्माता हैं जो एक अच्छी जवारी बना सकते हैं।

उपसंहार

भारत के शास्त्रीय संगीत के वाद्यों में सितार वादन के कई घरानों में आम तौर पर इस्तेमाल की जाने वाली गत रचनाएँ सिर्फ तकनीकी कौशल का अभ्यास नहीं हैं, वे राग के जटिल भावनात्मक सार या रस को व्यक्त करने के साधन हैं। प्रत्येक घराने द्वारा गत को एक विशिष्ट स्वाद दिया जाता है, जो लय, अलंकरण, वाक्यांश और भावनात्मक प्रस्तुति के अपने अनूठे दृष्टिकोण से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, इमदादखानी घराना अपने शक्तिशाली, व्यापक वाक्यांश और नाटकीय अलंकरण के कारण वीरता की भावना उत्पन्न करने में सक्षम है। दूसरी ओर, सेनिया घराना अपने नाजुक अलंकरण, सहज मींद और चिंतनशील स्वर के कारण शांता (शांति) या अद्भुत (आश्चर्य) की भावना को जगाने में सक्षम है। सटीकता और अभिव्यक्ति के कुशल संयोजन के माध्यम से, मैहर घराना रस की एक विस्तृत श्रृंखला को कुशलतापूर्वक व्यक्त करने में सक्षम है, जिसमें हल्के रागों में शांत शांता से लेकर

तेज गति से बजाए जाने वाले रचनाओं में ऊर्जावान वीर तक शामिल हैं। जब सब कुछ चल रहा होता है, तो इटावा घराना, अपने जटिल लयबद्ध पैटर्न और जोरदार लयबद्ध संवादों के साथ, अक्सर वीर और रौद्र (क्रोध) को प्रसारित करता है, जो राग की भावनात्मक यात्रा को एक गहन और तालबद्ध तत्व प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मुबारक हुसैन खान – संगीत और उसका अध्ययन, स्टर्लिंग प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1988, पृष्ठ 39
2. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय दिल्ली भारत – भारत के बारे में तथ्य, पृष्ठ 86–87, 1960.
3. अरविन्द पारिख – सितार और उसका विकास, 1968, संगीत में एक निबंध, पृष्ठ 31।
4. शांति गोवर्धन – संगीत शास्त्र दर्पण, पाठक प्रकाशन पृष्ठ 103 (अमीर खुसरो का जीवन परिचय)।
5. शारंगदेव – संगीत रत्नाकर, पृ.73.
6. सी.आर. दिवस – दक्षिणी भारत और दक्कन का संगीत और संगीत वाद्य, पृष्ठ 15।
7. द म्यूजिकल स्केल्स ऑफ हिंदूज से एक संदर्भ – एस.एम. टैगोर 1884, कलकत्ता।

8. अंतर्नाद – सुर और साज़ – पं. विजय शंकर मिश्र – कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स – नई दिल्ली – प्रथम संस्करण– 2004
9. आधुनिक व्यावसायिक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन : परम्परा व लक्षण : डॉ. जीतराम शर्मा : संजय प्रकाशन – अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली – प्रथम संस्करण – 2004
10. भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य – डॉ. प्रकाश महाडिक – मध्य प्रदेश संगीत अकादमी रविन्द्र नाथ ठाकुर मार्ग भोपाल, नवीन जैन प्रेस, प्रथम संस्करण – 1994
11. भारतीय कंठ संगीत एवं वाद्य संगीत – डॉ. अरुण मिश्रा – कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स – द्वितीय संस्करण – 2002
12. भारतीय संगीत कोष – विमल कान्त राय चौधरी, अनुवादक मदन लाल व्यास : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली ,प्रथम संस्करण – 1975
13. भारतीय संगीत वाद्य : डॉ. लाल मणि मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – जुलाई – 1973
14. वृहत हिन्दी कोष : कालिका प्रसाद, ज्ञान मंडल लि. बनारस – प्रथम संस्करण –2009
15. बालकृष्ण गर्ग –बृहद्देशी, मतंग मुनी संगीत का विशेष प्रकाशन ; श्लोक 281, अगस्त 1985 पृष्ठ सं. 30
16. भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन – डॉ. अंजना भार्गव – कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स – प्रथम संस्करण– 2002